प्रकाशन हेतु अनुमोदित

छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय, बिलासपुर

दाण्डिक विविध याचिका संख्या 216 वर्ष 2007

याचिकाकर्ता विद्या चरण शुक्ल, उम्र लगभग 79 वर्ष, पिता स्वर्गीय पं. रविशंकर शुक्ला, निवासी, राधेश्याम भवन, लाभांडी, रायपुर (छ.ग.)

बनाम

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

उत्तरवादी राज्य द्वारा केंद्रीय जांच ब्यूरो (सी.बी.आई), एनएमडीसी रेस्ट हाउस, सिविल लाइंस, रायपुर (छ.ग.)

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत याचिका

उपस्थिति:

श्री रवीश अग्रवाल, वरिष्ठ अधिवक्ता, सहित श्री वी.के. मुंशी, श्री अशोक त्रिवेदी और श्री अली नकवी (अधिवक्तागण) याचिकाकर्ता के अधिवक्तागण।

श्री गौतम भादुड़ी, प्रतिवादी/सी.बी.आई. के अधिवक्ता।

---

(1) संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि, राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी के नेता राम अवतार जग्गी को दिनांक 04.06.2003 को रात्रि 11:40 बजे गोली मार दी गई थी, और इस संबंध में थाना मौदहापारा, रायपुर में प्रथम सूचना रिपोर्ट क्रमांक 104/2003, भारतीय दंड संहिता की धारा 447 एवं 307 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए पंजीबद्ध की गई। उक्त प्राथमिकी श्री वी.के. पांडे, थाना प्रभारी, थाना मौदहापारा, रायपुर के कथन पर दर्ज की गई थी। उक्त घटना के पश्चात राम अवतार जग्गी की अस्पताल में मृत्यु हो गई। दिनांक 05.06.2003 को प्रातः 2:15 बजे मृतक के पुत्र सतीश जग्गी के कथन पर उसी घटना के संदर्भ में भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन एक अन्य प्रथम सूचना रिपोर्ट क्रमांक 105/2003 के रूप में दर्ज की गई। तत्पश्चात राज्य पुलिस द्वारा अपराध क्रमांक 104/2003 के संबंध में पाँच अभियुक्तगणों को गिरफ्तार किया गया तथा उनके विरुद्ध संबंधित न्यायालय में आरोप–पत्र प्रस्तुत किया गया। बाद में, उक्त मामला सत्र न्यायालय को सौंपा गया, जिससे सत्र वाद क्रमांक 334/2003 प्रारंभ हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि विचारण के दौरान अपर लोक अभियोजक द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 173(8) के अंतर्गत एक आवेदन प्रस्तुत किया गया, जिसमें अभियोजन द्वारा उक्त मामले में अग्रिम जांच की अनुमति हेतु प्रार्थना की गई। उक्त आवेदन को स्वीकृति प्रदान की गई और अग्रिम जांच की अनुमति दी गई। इसके पश्चात, राज्य शासन के निर्देशानुसार, मामला अग्रिम जांच हेतु केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो (सी.बी.आई) को हस्तांतरित किया गया। सी.बी.आई द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 120–बी, 302, 427 तथा शस्त्र अधिनियम की धारा 25/27 के अधीन अपराध क्रमांक आर.सी. 1/8/2004 दिनांक 22.01.2004 को पंजीबद्ध किया गया। जांच पूर्ण होने के उपरांत, सीबीआई द्वारा कुल 31 अभियुक्तों के विरुद्ध एक अन्य आरोप–पत्र प्रस्तुत किया गया, जिनमें से पूर्ववर्ती अपराध क्रमांक के पाँच आरोपीगण भी सम्मिलित थे, जिन पर धारा 120–बी, 302, 427, 201/34 भारतीय दंड संहिता तथा धारा 25/27 शस्त्र अधिनियम के अंतर्गत आरोप लगाए गए। उक्त मामला भी दिनांक 08.09.2005 को सत्र न्यायालय को सौंपा गया, जिससे सत्र वाद क्रमांक 329/2005 उत्पन्न हुआ। जिसमें दिनांक 31.05.2007 को निर्णय पारित किया गया और कुछ अभियुक्तों को दोषी ठहराया गया। दोषसिद्ध अभियुक्तों में से अधिकांश द्वारा अपील प्रस्तुत की गई हैं, जो वर्तमान में इस न्यायालय के समक्ष विचारणार्थ लंबित हैं।

Web Copy High Court of Chhattisgarh Bilaspur

(2) सत्र प्रकरण क्रमांक 329/2005 में, दिनांक 31.05.2007 को दोष सिद्धि एवं दण्डादेश पारित करते समय, माननीय अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय के पैरा–462 के अंतर्गत याचिकाकर्ता के नाम का उल्लेख करते हुए निम्नलिखित टिप्पणियां की गईः–

"(462) जैसे ही सतीश जग्गी को रामावतार जग्गी की गोली मारकर हत्या करने की जानकारी हुई। उसने प्रदेशाध्यक्ष एन०सी०पी० श्री विद्याचरण शुक्ला को दिया जो तत्काल मेकाहारा पहुंचे उन्हें बदला लेने का बड़ा अच्छा मौका मिला। अतः अपने समर्थकों के साथ थाना मौदहापारा पहुंचकर प्रदर्शन करते हुए अपने प्रतिद्वंदी से बदला लेने के आशय से उन्होंने सतीश जग्गी के माध्यम से अजीत जोगी एवं अमित जोगी के विरूद्ध उनके द्वारा हत्या करवाये जाने की रिपोर्ट करवा दिये ।"

सत्र न्यायालय द्वारा की गई उक्त प्रतिकूल टिप्पणियों के विरुद्ध याचिकाकर्ता ने उन्हें विलोपित कराने हेतु यह दाण्डिक विविध याचिका दायर की है।

(3) याचिकाकर्ता का यह प्रतिवेदन है कि वह एक वरिष्ठ राजनेता हैं और पूर्व में केंद्रीय मंत्रिमंडल में कैबिनेट मंत्री के पद पर आसीन रह चुके हैं तथा लगातार नौ कार्यकालों हेतु लोकसभा के लिए निर्वाचित सांसद रहे हैं। वे भारतीय ओलंपिक संघ, नई दिल्ली के आजीवन अध्यक्ष हैं। उनके पिता, स्वर्गीय पंडित रविशंकर शुक्ल, मध्यप्रदेश राज्य के पूर्व मुख्यमंत्री थे। उनके अग्रज स्वर्गीय पंडित श्यामा चरण शुक्ल, मध्यप्रदेश राज्य के तीन बार मुख्यमंत्री रहे। संबंधित कालखंड में याचिकाकर्ता को छत्तीसगढ़ राज्य के लिए राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी (एनसीपी) का राज्य अध्यक्ष नियुक्त किया गया था, और अध्यक्ष के रूप में उन्होंने रामअवतार जग्गी (अब दिवंगत) को एनसीपी की राज्य इकाई का कोषाध्यक्ष नियुक्त किया था। याचिकाकर्ता का आगे यह अभिकथन है कि सत्र न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियाँ अनुमानात्मक, कलंकसूचक, अवांछनीय एवं अपमानजनक हैं। आरोप–पत्र में, न तो अभियोजन पक्ष अथवा अभियुक्तगण द्वारा उन्हें साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया गया, न ही जिरह अथवा परीक्षा की गई, और न ही उन्हें न्यायालय द्वारा समन कर उपस्थिति के लिए बाध्य किया गया। इसके बावजूद, माननीय अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश द्वारा उनके विरुद्ध ऐसी टिप्पणियाँ की गई। याचिकाकर्ता के अनुसार, इन टिप्पणियों का कोई यथार्थ अधार नहीं है, बल्कि वे अत्यंत अपमानजनक, कलंकपूर्ण, निंदात्मक, एवं याचिकाकर्ता की प्रतिष्ठा के प्रतिकूल हैं, चूँकि ये टिप्पणियाँ प्रत्यक्षतः यह आक्षेप लगाती हैं कि याचिकाकर्ता ने श्री अजीत जोगी एवं अमित जोगी दोनों को, स्वर्गीय रामअवतार जग्गी की हत्या की आपराधिक षडयंत्र में उनके पुत्र सतीश जग्गी को एक साधन के रूप में प्रयुक्त कर, झूठा फँसाने हेतु कुटिल आपराधिक उद्देश्यों से कार्य किया।

(4) केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो (सीबीआई) द्वारा अपना लिखित प्रतिवेदन प्रस्तुत कर दिया गया है। प्रतिवेदन के पैरा 2 एवं 3 में यह प्रतिपादित किया गया है कि उपर्युक्त अपराध की विवेचना के दौरान, न तो

Web Copy High Court of Chhattisgarh Bilaspur

याचिकाकर्ता से साक्षी के रूप में पूछताछ की गई और न ही उसे अभियोजन साक्षी के रूप में प्रस्तुत किया गया। वाद की सुनवाई के दौरान भी, अभियोजन पक्ष, उत्तरवादी पक्ष अथवा न्यायालय द्वारा याचिकाकर्ता को न तो तलब किया गया और न ही साक्ष्य हेतु परीक्षित किया गया। उपर्युक्त परिस्थितियों में, यदि माननीय अपर सत्र न्यायाधीश द्वारा याचिकाकर्ता के विरुद्ध कोई निंदात्मक टिप्पणी की गई हो, तो इससे कोई आपराधिक दायित्व निर्मित नहीं होता तथा न ही अन्वेषण अभिकरण के रूप में सी.बी.आई पर कोई उत्तरदायित्व आरोपित किया जा सकता है। अतः दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 के अधीन प्रस्तुत इस दाण्डिक विविध याचिका पर इसके गुण–दोष के आधार पर निर्णय किया जा सकता है।

(5) याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित माननीय वरिष्ठ अधिवक्ता ने यह आग्रहपूर्वक अभिव्यक्त किया कि आरोपित टिप्पणियाँ/अवलोकन याचिकाकर्ता की प्रतिष्ठा के प्रतिकूल हैं, ये पूर्णतः अनुचित हैं तथा वाद के न्यायोचित निर्णय हेतु अनिवार्य नहीं हैं। उक्त टिप्पणियाँ वाद अभिलेख में उपलब्ध किसी भी साक्ष्य–सामग्री पर आधारित नहीं हैं, प्रत्युत वे अभिलेख में विद्यमान सामग्री के विरुद्ध हैं। उन्होंने दृढ़तापूर्वक निवेदन किया कि याचिकाकर्ता न तो विधिक कार्यवाही में पक्षकार था, न ही उसे किसी भी पक्ष की ओर से साक्षी के रूप में समन किया गया था, और न ही अभियोजन पक्ष द्वारा दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 161 के अधीन उसका बयान लिपिबद्ध किया गया था। अतः इस प्रकार पृष्ठभूमि में उसकी अनुपस्थिति में कोई भी टिप्पणी किया जाना प्राकृतिक न्याय के मूल सिद्धांतों का उल्लंघन है। इस चरण पर, इस माननीय न्यायालय की अधिकारिता तथा इस याचिका की सुनवाईयोग्यता के संबंध में, उन्होंने यह तर्क दिया कि वर्तमान परिस्थितियों में भी, अर्थात् जब उच्च न्यायालय में अभियुक्तों की अपीलें विचाराधीन हैं, तब भी यह न्यायालय, वाद के गुण–दोष को स्पर्श किए बिना, टिप्पणियों के विलोपन हेतु इस याचिका पर विचार कर सकता है। उन्होंने अपने उपर्युक्त तर्कों के समर्थन में भारत के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रवर्तित निम्नलिखित न्याय निर्णयों का संदर्भ प्रस्तुत किया:–

1. *डॉ. रघुबीर सरन – बनाम – बिहार राज्य और अन्य, [एआईआर 1964 सुप्रीम कोर्ट 1]*
2. *मनीष दीक्षित एवं अन्य – बनाम – राजस्थान राज्य, [2001 सी.आर.आई.एल.जे. 133 (सर्वोच्च न्यायालय)]*
3. *महाराष्ट्र राज्य बनाम पब्लिक कंसर्न फॉर गवर्नेंस ट्रस्ट और अन्य के साथ विनय मोहन लाल बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य (दोनों मामलों में सामान्य निर्णय), ((2007) 3 सुप्रीम कोर्ट केस 587]।*

Web Copy High Court of Chhattisgarh Bilaspur

(6) दूसरी ओर, उत्तरवादी के विद्वान अधिवक्ता ने अपने तर्कों को केवल उनके प्रत्युत्तर में उल्लिखित आधारों तक ही सीमित रखा।

(7) मैंने दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं की विस्तृत रूप से प्रस्तुति सुनी है तथा दाण्डिक विविध याचिका से संबंधित अभिलेखों का भी सूक्ष्म अवलोकन किया है।

(8) क्या टिप्पणी/आक्षेप वास्तव में विलोपन के योग्य हैं? इस संदर्भ में विनय मोहन लाल बनाम अज्ञात मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय अत्यंत महत्वपूर्ण है। सर्वोच्च न्यायालय ने ***डी.एफ. मैरियन बनाम मिन्नी डेविस, 1955 अमेरिकन एलआर 171*** में प्रतिपादित टिप्पणियों का उल्लेख करते हुए यह निरूपित किया कि किसी व्यक्ति की प्रतिष्ठा उसके जीवन का एक महत्वपूर्ण और अविभाज्य अंग है। अदालत ने उक्त निर्णय की उक्तियों का उल्लेख करते हुए यह उद्धृत किया कि — "दुर्भावनापूर्ण बदनामी से मुक्त होकर निजी प्रतिष्ठा का उपभोग करने का अधिकार प्राचीन काल से मान्य रहा है, और यह मानव समाज के लिए अनिवार्य है। एक उत्तम प्रतिष्ठा, मौलिक व्यक्तिगत सुरक्षा का तत्व है और संविधान द्वारा प्रदत्त जीवन, व्यक्तिगत स्वतंत्रता और संपत्ति के उपभोग के अधिकार के समान ही संरक्षित है।" सर्वोच्च न्यायालय ने ***बोर्ड ऑफ ट्रस्टीज, पोर्ट ऑफ बॉम्बे बनाम दिलीपकुमार राघवेंद्रनाथ नाडकर्णी, {(1983) 1 एस.सी.सी. 124}*** में पारित निर्णय का भी उल्लेख किया, जिसमें यह प्रतिपादित किया गया था कि प्रतिष्ठा का अधिकार संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत प्रदत्त जीवन के अधिकार का एक अनिवार्य अंग है। अंततः सर्वोच्च न्यायालय ने यह स्पष्ट रूप से कहा कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी प्रतिष्ठा बनाए रखने और उसकी रक्षा करने का वैधानिक और मूलभूत अधिकार है। यह निर्णय उस वाद में पारित किया गया था जिसमें महाराष्ट्र राज्य के तत्कालीन मुख्यमंत्री के विरुद्ध टिप्पणियाँ/आक्षेप/आलोचनाएँ की गई थीं। न्यायालय ने कहा कि इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि आक्षेपित निर्णय में की गई टिप्पणियाँ मुख्यमंत्री पर गंभीर आक्षेप आरोपित करती हैं, जो उनकी प्रतिष्ठा, सार्वजनिक जीवन और राजनीतिक कैरियर को प्रभावित कर सकती हैं, और सुनवाई का अवसर प्रदान किए बिना की गई निंदा प्राकृतिक न्याय के मूल सिद्धांतों का घोर उल्लंघन है।

(9) प्रतिष्ठा, दूसरों की सद्भावनापूर्ण राय प्राप्त करने का एक प्रकार का विधिक अधिकार है, जो कि उतनी ही प्रबल रूप से विकसित हो सकती है, और उसका अस्तित्व किसी भी अन्य विधिक अधिकार के समान ही वास्तविक एवं मान्य है। प्रतिष्ठा को ठेस पहुँचना, विधिक दृष्टिकोण से एक व्यक्तिगत क्षति की कोटि में आता है। वेबस्टर द्वारा "प्रतिष्ठा" को सद्गुण, यश, सम्मान या ऐसा चरित्र बताया गया है, जो लोकमत या सामाजिक सम्मान के आधार पर प्राप्त होता है, तथा यह रिपोर्ट या वक्तव्य द्वारा प्रभावित हो सकता है।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

अतः यह स्पष्ट है कि यदि किसी सक्षम न्यायालय द्वारा पारित निर्णय/आदेश में कोई ऐसी टिप्पणी या अनुच्छेद निहित हो, जो किसी व्यक्ति की प्रतिष्ठा को ठेस पहुँचाने वाला हो और उससे व्यक्तिगत क्षति उत्पन्न होती हो, तो उस व्यक्ति को निश्चय ही स्व–रक्षा हेतु न्यायिक उपचार उपलब्ध रहेगा। और यदि ऐसी टिप्पणी अनुचित एवं निराधार पाई जाती है, तो उस व्यक्ति को उसका निरसन करवाने हेतु विधिक कार्रवाई करने का वैधानिक अधिकार प्राप्त रहेगा।

(10) वर्तमान वाद में, निःसंदेह, याचिकाकर्ता छत्तीसगढ़ राज्य हेतु राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी (एन.सी.पी.) के अध्यक्ष पद का दायित्व निर्वहन कर रहा था एवं उसने पैरा–3 (पूर्वोक्त) में उल्लिखित अनेक अन्य पदों पर भी कार्य किया है। आक्षेपित निर्णय के पैरा–462 में की गई टिप्पणी में यह वर्णित है कि मृतक राम अवतार जग्गी, जो कि एन.सी.पी. के तत्कालीन कोषाध्यक्ष थे, की हत्या से उत्पन्न परिस्थितियों का लाभ उठाते हुए, याचिकाकर्ता ने अपने राजनीतिक विरोधियों से प्रतिशोध लेने के उद्देश्य से, मृतक के पुत्र को तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री अजीत जोगी तथा उनके पुत्र श्री अमित जोगी के विरुद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने हेतु बाध्य किया अर्थात्, उक्त टिप्पणी के अनुसार, याचिकाकर्ता ने सतीश जग्गी के साथ संयुक्त रूप से इन व्यक्तियों के विरुद्ध झूठी रिपोर्ट दर्ज कराने की साज़िश रची। निःसंदेह, यदि उक्त टिप्पणियाँ निराधार पाई जाती हैं, तो वे याचिकाकर्ता पर गंभीर लांछन लगाती हैं एवं उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा एवं राजनैतिक जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं। अतः, उपर्युक्त विधिक सिद्धांतों के आलोक में, टिप्पणियों की प्रकृति को दृष्टिगत रखते हुए, उन पर इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किया जाना न्यायोचित होगा।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

(11) क्या इस न्यायालय को इस याचिका पर विचार करने का अधिकार है, विशेषकर उस अवस्था में जब दोषसिद्धि के विरुद्ध नियमित अपीलें भी इस न्यायालय के समक्ष विचारित हैं? इस संबंध में, याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने डॉ. रघुबीर सरन (पूर्वोक्त) के निर्णय पर आश्रय लिया है। इस प्रकरण में, भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया था कि किसी राज्य में अपराधिक न्यायिक अधिकारिता का प्रयोग करने वाले सर्वोच्च न्यायालय के रूप में प्रत्येक उच्च न्यायालय में, न्याय के हित में कोई भी आदेश पारित करने की अंतर्निहित शक्ति निहित है। यह शक्ति किसी ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध की गई अप्रासंगिक टिप्पणियों को, जो न तो कार्यवाही का पक्षकार है और न ही साक्षी, अधीनस्थ न्यायालय के निर्णय अथवा आदेश से निर्देशित कर विलोपित करने तक विस्तारित है, चाहे मामला नियमित अपील या पुनरीक्षण के रूप में न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत न किया गया हो, और यह शक्ति न्याय के हित में उपयुक्त मामलों में प्रयोग की जाएगी। हालांकि, यह एक असाधारण विधिक शक्ति

है, अतः इसका उपयोग तभी किया जाएगा जब अधीनस्थ न्यायालय द्वारा अपने न्यायिक विवेकाधिकार का गंभीर दुरुपयोग किया गया हो, जैसे कि किसी ऐसे विषय पर टिप्पणी करना जो उसके समक्ष विवाद का विषय नहीं था, तथा जो अनुचित हो या जिससे किसी अन्य व्यक्ति को हानि या पूर्वाग्रह उत्पन्न होने की संभावना हो। सर्वोच्च न्यायालय ने आगे यह कहा कि इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि किसी न्यायाधिकरण का निर्णय, जिसे विधि द्वारा पक्षकारों के अधिकारों को प्रभावित करने वाले किसी भी विषय पर निर्णय लेने और निर्णय पारित करने का वैधानिक अधिकार प्राप्त है, तब तक अखंडनीय रहेगा जब तक कि विधि द्वारा उसके विरुद्ध प्रश्न या हस्तक्षेप की अनुमति न दी जाए। ऐसे स्थिति में, निर्णय को केवल निर्धारित सक्षम प्राधिकारी द्वारा ही चुनौती दी जा सकती है अथवा उसमें हस्तक्षेप किया जा सकता है, और वह भी केवल वैधानिक प्रावधानों की सीमित परिधि में। उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति भी इस प्रयोजन के लिए प्रवर्तनीय नहीं मानी जाएगी, क्योंकि जो कुछ विधि द्वारा अंतिम अथवा अखंडनीय घोषित किया गया है, वह ऐसी शक्ति की परिधि से बाहर रहेगा। किन्तु, किसी निर्णय से जुड़ी अखंडनीयता केवल उसके अभिन्न अंशों —— अर्थात् निर्णय और उसके कारणों —— तक ही सीमित होनी चाहिए। यह उन विषयों पर लागू नहीं हो सकती जो प्रत्यक्षतः निर्णय का भाग होते हुए भी वस्तुतः उसके मूल तत्व नहीं हैं। स्पष्टतः, उच्च न्यायालय अधीनस्थ न्यायालय के आदेश या निर्णय से टिप्पणियों के विलोपन द्वारा, किसी भी स्थिति में न तो उसके गुण–दोष में हस्तक्षेप करेगा और न ही किसी वस्तुनिष्ठ प्रश्न में परिवर्तन करेगा, बल्कि केवल उस अवांछनीय विषयवस्तु को विलोपित करेगा जो प्रकरण से असंबद्ध होते हुए भी दस्तावेज में सम्मिलित कर दिया गया था। चूँकि उच्च न्यायालय द्वारा किया गया यह कार्य केवल विलोपन तक ही सीमित है, अतः इस तथ्य से इस प्रकार की प्रक्रिया पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाया जा सकता कि धारा 423 तथा धारा 439 —— जो कि अपील और पुनरीक्षण शक्तियों से संबंधित हैं (जैसा कि उस समय था) —— ऐसे मामलों के संदर्भ में मौन हैं। सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि वे इस प्रकार की अंतर्निहित शक्ति को वर्जित नहीं मानते। सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी निर्णय दिया कि निःसंदेह, ऐसी शक्ति के प्रयोग का प्रभाव किसी निर्णय अथवा आदेश से कुछ पूर्व विद्यमान अंश को विलोपित करना होगा, जिससे उस निर्णय अथवा आदेश का अभिलेखीय स्वरूप सीमित रूप में परिवर्तित होगा। लेकिन न्याय की सिद्धि को प्राथमिक मानते हुए, उच्च न्यायालय को ऐसी न्यायिक शक्ति से संपन्न माना जाना चाहिए। सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहा कि जब किसी विशिष्ट मामले में उच्च न्यायालय के समक्ष यह प्रश्न उठे कि क्या ऐसी अविभाषित अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग किया जाए, तब न्यायालय को अत्यधिक सावधानी तथा न्यायिक विवेक का परिचय देना आवश्यक होगा। अतः जब कोई पीड़ित पक्षकार

Web Copy High Court of Chhattisgarh Bilaspur

अधीनस्थ न्यायालय के आदेश अथवा निर्णय से किसी अनुच्छेद के विलोपन हेतु आवेदन करता है, तो न्यायालय को पूर्ण रूप से संतुष्ट होना चाहिए कि जिस अनुच्छेद की शिकायत की जा रही है वह पूर्णतः अप्रासंगिक, अनुचित है तथा अभिलेख में उसके बने रहने से संबंधित व्यक्ति को गंभीर क्षति की आशंका है। साथ ही यह स्पष्ट होना चाहिए कि वह अनुच्छेद किसके लिए संदर्भित है और उसके विलोपन से निर्णय या आदेश के कारणों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

(12) इसलिए ऐसे अधिकारिता का प्रयोग करने के लिए, अन्य बातों के साथ–साथ निम्नलिखित सिद्धांत स्थापित किए जा सकते हैं:

I. ऐसी शक्ति का प्रयोग करने से पूर्व यह निर्धारित करना आवश्यक होगा कि टिप्पणियाँ निर्णय के एक अंग के रूप में आई हैं या वास्तव में वे उसके अभिन्न अंग नहीं हैं;

II. विलोपन से निर्णय के गुण–दोष या सार में कोई परिवर्तन नहीं होना चाहिए;

III. आपत्तिजनक अंश निर्णय में नहीं होना चाहिए था। यह पूर्णतः औचित्यपूर्ण ठहराया जाना चाहिए कि जिसकी शिकायत की गई है वह अंश अप्रासंगिक, अनावश्यक एवं अनुचित था;

IV. विलोपन से न्यायिक आदेश, उसके कारण या आधार प्रभावित नहीं होने चाहिए;

V. इस शक्ति का प्रयोग न्यायिक सिद्धांतों, निर्णय की अंतिमता एवं अनुलंघनीयता को ध्यान में रखते हुए, अत्यंत सावधानी, विवेक तथा संयम के साथ सीमित रूप में किया जाना आवश्यक है;

VI. न्याय के उद्देश्यों की रक्षा हेतु सभी आवश्यक प्रयास किए जाने चाहिए।

(13) यदि हम इन सिद्धान्तों को वर्त्तमान वाद के तथ्यात्मक परिदृश्य एवं परिस्थितियों पर प्रतिस्थापित करें, तो प्रथम दृष्टया ऐसा परिलक्षित होता है कि अभिलेखों में ऐसी कोई अभिलेखीय सामग्री उपलब्ध नहीं है, जो ऐसी टिप्पणी को औचित्य प्रदान कर सके। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने सतीश जग्गी द्वारा दर्ज कराई गई प्रथम सूचना रिपोर्ट क्रमांक 105/2003 की विषयवस्तु का संज्ञान प्रस्तुत करते हुए उक्त बिंदु पर विधिक तर्क प्रस्तुत किया है तथा न्यायालय में प्रस्तुत अपने साक्ष्य का भी उल्लेख किया है। विभिन्न अनुच्छेदों का संदर्भ देने के उपरांत, उन्होंने विशेष रूप से अपने साक्ष्य के अनुच्छेद 67 का उल्लेख किया है, जिससे यह प्रतिपादित होता है कि ऐसा कोई तथ्य अभिलेखबद्ध नहीं है जिससे यह प्रतित हो कि याचिकाकर्ता द्वारा ही श्री अजीत जोगी तथा श्री अमित जोगी के विरुद्ध आरोपात्मक रिपोर्ट लिपिबद्ध करवाई गई थी।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

(14) मैंने प्रथम सूचना रिपोर्ट की विषय–वस्तु एवं सतीश जग्गी के न्यायालयीन साक्ष्य का भी अवलोकन किया है। इन दस्तावेज़ों से ऐसा प्रतीत नहीं होता कि उक्त रिपोर्ट याचिकाकर्ता के निर्देश पर पंजीबद्ध की गई थी अथवा अजीत जोगी एवं अमित जोगी के विरुद्ध लगाए गए आरोप याचिकाकर्ता की लापरवाही के कारण लगाए गए थे और याचिकाकर्ता द्वारा सतीश जग्गी को एक साधन के रूप में प्रयुक्त करते हुए उक्त रिपोर्ट पंजीबद्ध करवाई गई। इसके अतिरिक्त, अभिलेख में अंकित टिप्पणियाँ किसी ठोस सामग्री पर आधारित प्रतीत नहीं होतीं, यद्यपि वे स्पष्टतः निर्णय का अभिन्न अंग प्रतीत नहीं होतीं। पैरा–67 में, सतीश जग्गी ने इस तथ्य से इंकार किया है कि याचिकाकर्ता द्वारा उस पर कोई दबाव डाला गया हो अथवा रिपोर्ट याचिकाकर्ता द्वारा पुलिस थाना में दर्ज कराई गई हो और उस पर दबाव डालकर हस्ताक्षर प्राप्त किए गए हों। वास्तव में, उक्त टिप्पणियाँ अनुपयुक्त हैं तथा इनके विलोपन से निर्णय, कारण या आदेश पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा। यदि उक्त टिप्पणियाँ विलोपित कर दी जाती हैं तो निर्णय की अंतिमता पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा। गुण या सामग्री के आधार पर विलोपन से निर्णय में कोई परिवर्तन नहीं होगा और उपर्युक्त सिद्धांतों के आलोक में विलोपन संभव है।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

(15) दोषसिद्ध अभियुक्तों द्वारा दायर दाण्डिक अपीलों के लंबित रहने के दौरान निष्कासन के संबंध में, मेरी दृष्टि में कोई निषेध नहीं है, क्योंकि दोषसिद्ध व्यक्तियों द्वारा दायर की गई अपीलों की सुनवाई एवं निर्णयन उनके स्वतः गुण–दोष (के आधार पर किया जाना है। विनय मोहन लाल बनाम राज्य के वाद में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय के अनुच्छेद–38 में की गई टिप्पणियों को निर्दिष्ट करते हुए हटाया और यह अवगत कराया कि संबंधित विशेष अनुमति याचिका पर एक पृथक निर्णय के माध्यम से विपरीत दावों के गुण–दोष पर पूर्ण रूप से विचार किया जाएगा; और अनुच्छेद–39 में यह स्पष्ट किया कि यह अन्य विवादों के गुण–दोष में प्रवेश करने का उद्देश्य नहीं रखता, जो कि विशेष अनुमति याचिका के विवादास्पद विषय हैं। अतः, उपर्युक्त परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में, यद्यपि संबंधित आपराधिक अपीलें लंबित हैं और जिनकी सुनवाई उनके निज गुण–दोष पर की जानी है, तथापि, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत दायर यह याचिका पोषणीय है।

(16) अब अंतिम प्रश्न पीठपीछे की गई टिप्पणियों के विषय में है। याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने इस संदर्भ में मनीष दीक्षित (पूर्वोक्त) के निर्णय का उल्लेख किया है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उक्त निर्णय के अनुच्छेद–43 में निम्नलिखित टिप्पणियाँ की हैं:

"**43.** इन बातों के अतिरिक्त, इस माननीय न्यायालय ने बार–बार यह आगाह किया है कि किसी भी व्यक्ति के विरुद्ध न्यायालय द्वारा कोई भी निंदात्मक/अवमाननात्मक टिप्पणी करने से पूर्व, विशेष रूप से जब ऐसी टिप्पणियों से संबंधित व्यक्ति के भविष्य के सेवाकालीन हितों/करियर पर गंभीर प्रभाव पड़ सकता हो, तब ऐसी टिप्पणियाँ करने से पूर्व संबंधित व्यक्ति को उचित प्रतिकूल सुनवाई (प्रदान किया जाना अनिवार्य है। प्रस्तावित टिप्पणियों अथवा आलोचनाओं के संदर्भ में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अधीन सुनवाई का अवसर दिया जाना आवश्यक है। अन्यथा, ऐसी टिप्पणियाँ उक्त सिद्धांतों का उल्लंघन मानी जाएँगी। इस प्रकरण में अ.सा. 30 (देवेंद्र कुमार शर्मा) को ऐसा कोई अवसर प्रदान नहीं किया गया था। ***(उत्तर प्रदेश राज्य बनाम* मोहम्मद नईम, *ए.आई.आर 1964 एस.सी 703;* च. जगे राम, पुलिस निरीक्षक व अन्य बनाम हंसराज मिढ़ा, *(1972) 1 एस.सी.सी 181;* आर. के. लक्ष्मणन बनाम ए. के. श्रीनिवासन व अन्य, *(1975) 2 एस.सी.सी 466;* निरंजन पटनायक बनाम शशिभूषण कर व अन्य, *ए.आई.आर 1986 एस.सी 819; तथा* कर्नाटक राज्य बनाम रजिस्ट्रार जनरल, कर्नाटक उच्च न्यायालय, *ए.आई.आर 2000 एस.सी 2626)***

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

(17) *बिहार राज्य बनाम लालकृष्ण आडवाणी एवं अन्य* [(2003) 8 एस.सी.सी 361] वाद में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह अवलोकन किया था कि किसी व्यक्ति को पक्षकार बनाए बिना तथा उसे प्रतिकल्प (श्रोता) का अवसर प्रदान किए बिना उसके विरुद्ध कठोर आलोचना नहीं की जा सकती, क्योंकि प्रतिष्ठा का अधिकार व्यक्ति के मौलिक अधिकारों में सम्मिलित है। आडवाणी वाद का उल्लेख विनय मोहन लाल के निर्णय में किया गया है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पुनः यह अभिमत व्यक्त किया कि जब कोई प्राधिकारी ऐसा निर्णय पारित करता है, जिसके दीवानी परिणाम हो सकते हैं और जो किसी व्यक्ति के अधिकारों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करता है, तो प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत स्वतः ही लागू हो जाते हैं।

(18) यदि उपर्युक्त सिद्धांतों को इस वाद में लागू किया जाए, तो यह स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है कि याचिकाकर्ता न तो कार्यवाही में पक्षकार था और न ही विवेचना के दौरान केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो (सी.बी.आई) द्वारा उसका कथन अभिलेखबद्ध किया गया था। उसे न तो अभियोजन साक्षी के रूप में और न ही प्रतिरक्षण साक्षी के रूप में उद्धृत किया गया था, तथा न ही सत्र वाद की कार्यवाही में न्यायालय साक्षी के रूप में उसकी जाँच की गई थी। अर्थात्, वह सम्पूर्ण कार्यवाही से अनभिज्ञ था और उसकी अनुपस्थिति में (पीठ पीछे) उपर्युक्त टिप्पणियाँ की गई। जैसा कि मैंने पूर्व में ही प्रतिपादित किया

है कि उक्त टिप्पणियाँ आपत्तिजनक हैं एवं याचिकाकर्ता की प्रतिष्ठा के विरुद्ध हैं तथा ये टिप्पणियाँ उसके विधिसम्मत अधिकारों को प्रभावित करती हैं, जिनकी सुरक्षा का उसे पूर्ण अधिकार है। ऐसी स्थिति में, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत पूर्णतः लागू होते हैं। वस्तुतः, सत्र न्यायालय द्वारा की गई उक्त टिप्पणी के माध्यम से याचिकाकर्ता को अवसर प्रदान किए बिना दोषारोपित किया गया है। अतः, उक्त टिप्पणियाँ प्राकृतिक न्याय के मूलभूत सिद्धांतों का उल्लंघन करते हुए पारित की गई प्रतीत होती हैं।

(19) उपर्युक्त कारणों के आधार पर, मैं यह प्रतिपादित करता हूँ कि सत्र न्यायालय द्वारा याचिकाकर्ता के विरुद्ध पारित आक्षेपित निर्णय के परिच्छेद–462 में की गई टिप्पणियाँ/प्रेक्षण पूर्णतः अनुचित एवं विधिसम्मत नहीं थीं, तथा उनका विलोपन अपेक्षित है। फलतः, निर्णय के परिच्छेद–462 में निहित उक्त टिप्पणियाँ निरस्त की जाती हैं।

(20) याचिका उपर्युक्त निर्दिष्ट सीमा तक स्वीकृत की जाती है। यह स्पष्ट किया जाता है कि इस आदेश में की गई कोई भी टिप्पणी, इस न्यायालय में लंबित दाण्डिक अपीलों के गुण–दोष पर किसी भी प्रकार से प्रभावकारी नहीं होगी, एवं उक्त अपीलें विधिसम्मत रूप से उनके गुण–दोष के आधार पर ही विचारार्थ ली जाएंगी।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

(21) तदनुसार, आदेशित किया जाता है।

सही /–

सुनील कुमार सिन्हा

न्यायाधीश

अस्वीकरणः हिन्दी भाषा में निर्णय का अनुवाद पक्षकारों के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा। समस्त कार्यालयीन एवं व्यवहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेजी स्वरुप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वियन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।

Translated By: Akansha Verma Dabhadker

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur